[Conference- Innovation in Music & Dance :January,2015] ISSN- 2350-0530(O) 2394-3629(P)
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v3.i1SE.2015.3470

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

लोक संगीत में झलकता समाज का प्रतिबिम्ब

प्रो. किन्शुक श्रीवास्तव
संगीत विभाग
रश्मि ड्योंडी
शोधार्थी
वनस्थली विद्यापीठ (राज.)

मानव समाज में संस्कृति पायी जाती है। यह संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है। इसी कारण प्रत्येक समाज की संस्कृति जीवित रहती है। प्रत्येक समाज की संस्कृति भाषा, प्रथा, ज्ञान, परम्पराएँ, धर्म, कानून, संगीत, लोक कला, लोक–संगीत, लोक–कथाएँ, साहित्य आदि में निहित होती हैं। समाज में मनुष्य की पारस्परिक अन्तः क्रियाएँ एक–दूसरे को प्रभावित करती है तथा इन्हीं क्रियाओं के आधार पर ही सांस्कृतिक समाज बनता है। अतः समाज का दर्पण लोक संस्कृति में ही निहित है। ''संस्कृति की परम्परा में संगीत सबसे अधिक लोकप्रिय है। लोक संगीत संस्कृति की विशाल विभूति है। समाज के जनसाधारण के मनोरंजनार्थ लोक संगीत की भाषा सरल, धुनें सहज एवं हृदय ग्राहय होती है। मानव समाज की दैनिक क्रिया, हल चलाना, पशु चराना, चक्की पीसना, गोड़ना। खेते नियरानों कुओं से पानी भरना, शादी ब्याह, नामकरण, उत्सव, त्यौहार, प्राकृतिक स्थल लहलहाते खेत, नदी के बहते जल की ध्वनि, झर–झर झरते झरने, वर्षा, बसंत ऋतु ,खिलते रंग बिरंगे फूल आदि प्राकृतिक घटनाएँ लोक गीतों के उद्‌गम स्थल हैं ''लोक गीतों के लिये श्रीराम त्रिपाठी जी ने 'ग्रामगीत' शब्द को अपनाया है। लोक गीतों को ग्रामगीत कहने के पीछे यह अनुभव है कि ग्रामीण लोगों ने ही लोकगीतों की परम्परा को सुरक्षित रखा है। भारतीय जीवन से संबद्ध विभिन्न संस्कार व उत्सवों का स्थान शहरी जीवन में अपेक्षाकृत कम है, अतः नाना अवसरों पर गाए जाने वाले गीत गाने के अवसर पाए बिना नष्ट हो रहे हैं जबकि देहातियों के लिए अभी भी उत्सवों ,त्यौहारों के किए उत्साह है। अतः खेतों की बुआई, कटाई, नियराई, शादी ब्याह के समय, अनायास ही उनके हृदय से ये गीत निःसृत हो जाते हैं। लोक संगीत की ये स्वर लहरियाँ इन्हीं त्यौहारों तथा मेले व पर्वों पर ही सुनाई देकर समाप्त नहीं होती बल्कि ये मनमोहक ताने यहाँ के बसने वाले जनसाधारण के जीवन में निरन्तर गूँजती है। मानव जन्म से लेकर मृत्यु तक के अवसर पर भी लोक संगीत अभिन्न स्थान रखता है। लोक गीत विभिन्न परिस्थिति अनुसार अलग–अलग भावनाओं से भरपूर अनेक समय पर जन साधारण के हृदय से स्वतः ही निर्मित होते चले जाते हैं। अतः लोक संगीत समाज में रहने वाले साधारण व्यक्ति की स्वर, लय व ताल युक्त साधारण मनोभावाभिव्यक्ति है।

लोक संगीत में सामाजिक रीति–रिवाज तथा पारिवारिक सम्बन्धों का भी वर्णन मिलता है। जैसे कि जन्म के समय विवाह के समय गाये जाने वाले संस्कार गीतों में रीति–रिवाज तथा ननद–भाभी–देवर के बीच हास्य व्यंग्य, एक विरही पत्नी के अपने पति के लिए करूण गीतों आदि में मार्मिक व हृदयस्पर्शी बोल भरे रहते हैं। लोक संगीत मानव जीवन के उल्लास व हर्ष का प्रतीक है। लोक संगीत आडम्बर से बहुत परे होता है और वास्तविकता के अति निकट क्योंकि लोक गीतों में शब्दों व भाषा की सरलता अधिक और जन साधारण के भावों की गहराई अपूर्ण पाई जाती है। प्रत्येक प्रान्त का लोक संगीत वहाँ के समाज के अनुसार एक विशिष्ट पहचान लिये हुए होता है। जिसे व्यक्ति सुनकर ही पहचान लेता है कि अमुक लोकगीत या लोक नृत्य अमुक प्रदेश/प्रान्त का है। जैसे राजस्थान का घूमर, कालबेलिया नृत्य, मांड आदि गुजरात का डांडिया, गरबा आदि, पंजाब का भांगड़ा, गिद्‌दा, टप्पा आदि, बंगाल का बाऊल, असम का बिहू, यू.पी. का कजरी, चैती, बारहमासा आदि सुनकर या देखकर व्यक्ति पहचान कर बता देता हे कि कौन सी लोक संगीत विधा किस स्थान से सम्बन्धित है क्योंकि लोकसंगीत किसी भी स्थान के सामाजिक रीति–रिवाज, वेशभूषा, भाषा, साहित्य, गाथाओं तथा जनसाधारण के मनोभावों से प्रभावित होता है। लोक संगीत श्रुति परम्परा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानान्तरित होता रहता है तथा इसमें परिवर्तशील समाज की झलक भी देखने को मिलती है अर्थात् जैसे–जैसे समाज में बदलाव होता है उसी के अनुसार लोक संगीत की भाषा, काव्य, लय, ताल आदि भी प्रभावित होती है। ''लोक जीवन में संगीत की जो स्वाभाविक प्राकृतिक व निरन्तर प्रथा है, वह अनादिकाल से लोक–जगत में नित नवीन प्रेरणा, नवजीवन व माधुर्य प्रदान करती रहती हैं। आज भी ग्रामीण समाज दिनभर के कठिन परिश्रम के बाद शाम को चौपाल में एकत्रित होकर नाच–गाकर अपने सारे दिन की थकान दूर करके नवजीवन नवउल्लास प्राप्त करते है। ग्रामवासी अपने नित्य के परिश्रम के साथ संगीत को जोड़कर अपनी श्रम शक्ति व आत्मबल बढ़ाते हैं और तनावमुक्त रहते हैं।'' लोक संगीत समाज की उत्पत्ति है व्यक्ति विशेष की उत्पत्ति नहीं विभिन्न परिवार को जोड़ने से ही समाज एक मूर्त रूप लेता है और समाज के इन्हीं परिवारों के दैनिक क्रियाकलापों से लोकगीत बनते चले आते हैं अतएव लोकगीत व समाज का अटूट सम्बन्ध है तथा लोक संगीत में किसी भी प्रान्त का सामाजिक प्रतिबिम्ब निहित होता है।

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

सन्दर्भ –

1 डॉ. गुप्ता, रूचि, भारतीय संस्कृति : शाश्वत जीवनदृष्टि एवं संगीत, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रब्यूटर्स, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण 2006
2 डॉ. तिवारी, ज्योति, कुमाऊँनी लोकगीत तथा संगीत शास्त्रीय परिवेश, कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली–2000
3 डॉ. सिन्हा, सुरेखा, संगीत चिन्तन, पंचशील प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण–2008
4 बोराणा रमेश, राजस्थान के लोक वाद्य, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर, सह प्रकाशक राजस्थान ग्रन्थागार, जोधपुर।
5 सामर देवीलाल, सहायक वर्मा गीडाराम, राजस्थान का लोक संगीत, भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर, प्रथम संस्करण 1957